बचपन और बालसाहित्य

ओमप्रकाश कश्यप

बचपन और बालसाहित्य

ओमप्रकाश कश्यप

बुनाई का गीत

उठो

झाड़न में / मोजों में/ टाट में/ दरियों में दबे हुए

धागो/ उठो/

उठो कि कहीं कुछ गलत हो रहा है.

फिर से बुनना होगा

उठो मेरे टूटे हुए धागो

उठो!

कि बुनने का समय हो रहा है.

कहीं कुछ गलत हो रहा है.

केदारनाथ सिंह

अनुक्रमणिका

भूमिका 5

हिंदी बालसाहित्य की यात्रा : एक विहंगावलोकन 15

वैदिक युग

महाकाव्य युग

बौद्ध और जैन साहित्य में बालोपयोगी साहित्य

मध्यकाल: भक्तिकाव्य में बालोपयोगी रचनाएं

बालसाहित्य का विकासयुग: साहित्य में बचपन की दस्तक

हिंदी बालसाहित्य की मुख्य प्रेरणाएं

हिंदी में बालसाहित्यिक चेतना का उभार

हिंदी बालसाहित्य: नींव की तलाश

हिंदी बालसाहित्य: आधुनिक युग

साठ के दशक में बालसाहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियां एवं चुनौतियां

बालसाहित्य के सरोकार 113

बालसाहित्य एवं लोकतांत्रिक संस्कार

भूमंडलीकरण के आग्रह और ग्रामीण बचपन

इकीसवीं सदी में हिंदी बालसाहित्य : स्थिति और चुनौतियां

वैश्विक प्रभाव और हिंदी बालसाहित्य

किस्सागोई की कला और बालसाहित्य

'कहन' के बिना (बाल)कहानी कहां!

बालसाहित्य का मनोविज्ञान और बचपन 194

बचपन बहती गंगा

उतावले समाज में बचपन

बड़ों का बचपना: बालक की जिद

नाम में कुछ तो रखा है

बचपन की पुस्तकों में बचपन

कल्पना एवं बालविकास

ज्ञान और ज्ञानार्जन की उलटबांसियां

भारी बस्ता : शिक्षा के बाजारीकरण से उपजी चिंता

बजार की भाषा और बचपन

बालक की शिक्षा और समाज

बालक और समयबोध

हिंदी बालसाहित्य : परंपरा एवं आधुनिक संदर्भ 318

आधुनिक भारत की अपेक्षाएं और बालसाहित्य

बालसाहित्य और विज्ञानलेखन 340

विज्ञान लेखन और नैतिकता के सवाल

परीकथाओं का मनोविज्ञान

परीकथा के मुख्य तत्व

उपसंहार 419

साक्षात्कार : बालसाहित्य की स्थिति पर चर्चा

भूमिका

इन दिनों भारतीय समाज की संक्रमण बेला है. एक ओर सांप्रदायिक शक्तियां उग्र होकर समाज के स्थायी ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करने पर तुली हैं. दूसरी ओर सैकड़ों वर्षों से दमित अस्मिताएं संगठित होकर सामने आ रही हैं. वे बदलाव चाहती हैं. जाति और धर्म के नाम पर लादी गईं, असमानता और दमन का पर्याय बन चुकी शताब्दियों पुरानी व्यवस्थाएं अब उन्हें स्वीकार्य नहीं हैं. यह कोई नई मांग नहीं है. स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही तय कर लिया गया था कि जाति और धर्म के नाम पर बुरी तरह विभाजित भारतीय समाज को एक-राष्ट्र में बदलने के लिए इसकी पुनर्रचना करनी होगी. इसी संकल्प के साथ जनसाधारण स्वतंत्रता संग्राम में उतरा था. मगर देश आजाद होते-होते यथास्थितिवादी शक्तियां पुनः सत्ता पर काबिज होने लगी थीं. आजादी के बाद उसका स्थान 'विकास' नामक एक रुपहले शब्द ने ले लिया है. पिछले तीन-चार दशकों से इस शब्द का जादू अमीर-गरीब सबके सिर चढ़कर बोल रहा है. यह इतना लुभावना शब्द है कि केवल इसी के नारे के साथ राजनीतिक दल साल-दर-साल चुनाव जीतते चले जाते हैं. विकास आमतौर पर तयशुदा दिशा में परिवर्तन की बात करता है. बिना दावा किए कि उसके द्वारा लाए किए गए सभी प्रयत्न केवल और केवल सकारात्मक परिणाम देने वाले होंगे. उसके नाम पर हुआ प्रत्येक परिवर्तन मनोवांछित परिणाम दे, समाज को वांछित दिशा में ले जाए-यह अनिवार्य नहीं है. इस हकीकत को जनसाधारण भले न समझे, मगर विकास की रात-दिन रट लगाने वाली शक्तियां भली-भांति जानती हैं. वे यह भी जानती हैं कि विकास के नाम पर होने वाला प्रत्येक परिवर्तन, मनुष्य तथा प्रकृति के बीच की दूरी को बढ़ाता है. इसके जितने भी दुष्प्रभाव संभव हैं, वे किसी न किसी रूप में प्रत्येक विकास कार्यक्रम का हिस्सा बन जाते हैं. बावजूद इसके विकास का आकर्षण अक्षुण्ण बना रहता है.

कई बार खास दिशा में विकास की मांग के चलते, दूसरी दिशाओं की ओर से जो पहली जितनी ही महत्त्वपूर्ण हैं, आंखें मूंद ली जाती हैं. सरकार दावा करती है, बांध बनेंगे तो बिजली बनेगी. बिजली बनेगी तो कारखाने चलेंगे. कारखाने चलेंगे तो लोगों को रोजगार मिलेगा. समाज में समृद्धि आएगी. लेकिन बांध बनने से